2. हार

- मन्नू भंडारी

मन्नू भंडारी का जन्म 3 अप्रैल 1931 में मध्यप्रदेश के भानपुरा नामक गाँव में एक संयुक्त मारवाड़ी परिवार में हुआ था। हिंदी की आधुनिक कहानीकार और उपन्यासकार हैं। मन्नू जी अपने पिता के सभी संतानों में सबसे छोटी थीं। उनका नाम मेहन्द्र कुमारी था। घर परिवार के लोग उन्हें लाड से 'मन्नू' कहकर पुकारते थे। यही नाम उन्होंने आजीवन अपनाया। मन्नू भंडारी ने अपनी सृजन प्रतिभा के बूते आधुनिक हिंदी कथाकारों के मध्य एक विशिष्ट पहचान बनायीं है। उनकी रजनाओं में नारी अपने - अपने तरीके से संघर्ष करती दिखाई पड़ती हैं। उनकी रचनाओं का अन्य भाषाओं जैसे गुजाराती, पंजाबी, मराठी, बंग्ला, कन्नड, मलयालम और सिंधी में भी अनुवाद हुआ है।

मन्नू भंडारी ने कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं में कलम चलाई है। राजेंद्र यादव के साथ लिखा गया उनका उपन्यास 'एक ईंच मुस्कान' पढ़े-लिखे और आधुनिकता पसंद लोगों की दुखभरी प्रेमगाथा है। विवाह टूटने की त्रासदी में घुट रहे एक बच्चे को केंद्रीय विषय बनाकर लिखे गए उनके उपन्यास 'आपका बंटी' को हिंदी के सफलतम उनप्यासों की कतार में रखा जाता है। आम आदमी की पीड़ा और दर्द की गहराई को उकेरने वाले उनके उपन्यास 'महाभोज' पर आधारित नाटक खूब लोकप्रिय हुआ था। इनकी 'यही सच है' कृति पर आधारित 'रजनीगंधा फ़िल्म' ने बॉक्स ऑफिस पर खूब धूम मचाई थी ।

उपन्यास - आपका बंटी, महाभोज, स्वामी, एक इच मुस्कान, कलवा

कहानी-संग्रह - एक प्लेट सैलाब, मैं हार गई, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है, त्रिशंकु, श्रेष्ठ कहानियाँ, आँखों देखा झूठ, नायक खलनायक विदूषक।

फ़िल्म पटकथाएँ - रजनीगंधा, निर्मला, स्वामी, दर्पण।

नाटक - विना दिवारों का घर (1966), महाभोज का नाट्य रूपान्तरण (1983)

आत्मकथा - एक कहानी यह भी (2007), प्रौढ़ शिक्षा के लिए; सवा सेर गेहूं (1993) (प्रेमचन्द की कहानी का रूपान्तरण)

कल से रह रहकर बचपन में पढ़ी एक कहानी याद आ रही है। ईसाइयों की एक-पौराणिक कथा पढ़ी थी कि देवताओं ने शैतान को किसी अपराध के कारण मृत्यु लोक में धकेल दिया। बहुत गिड़गिड़ाने पर एक शर्त रख दी कि जब मृत्यु लोक के सब प्राणी आकर उसकी मुक्ति की प्रर्थना करेंगे, तभी वो शाप मुक्त हो सकेगा। बेचारा शैतान दिलों जान से यह कोशिश करता कि संसार के सारे प्राणी उसकी मुक्ति की प्रार्थना करें। पर देवताओं के शाप के साये के नीचे दिन रात वो लोगों को ईश्वर के खिलाफ भड़काया करता और लोग उसकी ओर आकर्षित हो ईश्वर से दूर होते जाते, जितना वह ईश्वर के समीप लाना चाहता उतना ही उन्हें दूर ले जाता और अपनी बेबसी पर मन ही मन घुटता कुढ़ता और कुछ ना कर पाता। लगता है ऐसे, किसी शाप की छाया मुझ पर भी पडी हुई है। नहीं तो कल जो कुछ हो संभव था? गया वह क्या कल से न जान कितनी वार सोच चुकी हूँ कि इस बात को भूल जाउं? घोंट के पी जाऊं जिससे कोई जान

भी ना पाए। पर लगता है कि यदि इसे उगल न दिया तो ये बात ही मुझे पी जाएगी और कल की इस स्थिति तक पहुंचने के पहले कितना क्या कर आई हूँ, उसकी भी एक झलक दिखा ही दूंगी।

मध्यवर्ग के परिवार की एक लड़की की तरह मेरा बचपन भी हंसते खेलते लाड दुलार की छाया में बीता। माँ बाप की इकलौती बिटिया और ज़िद और हट जन्म के साथ ही। घर में लक्ष्मी की असीम कृपा चाहे ना रही हो, पर सरस्वती की अपार कृपा दृष्टि थी और घर का सारा वातावरण ही साधारण परिवार से नितांत भिन्न था। पिताजी अत्यंत स्वतंत्र प्रकृति के बुद्धि जीवी व्यक्ति थे और स्वच्छंदता मैंने उनसे विरासत में पाई थी। पिताजी यूँ किसी भी राजनीतिक दल के सदस्य नहीं थे पर सभी दलों में बेहद दिलचस्पी रखते और सब की बड़ी खरी आलोचना भी करते थे। उनके पास नगर के विभिन्न पार्टियों के प्रमुख लोग रोज ही आया करते थे। घंटों बहसें हुआ करती हैं। जब कभी दो विरोधी दल के लोग आते थे तब तो घर बहस अखाड़ा हो जाया करता था। मैं जब नहीं समझती थी तब भी बराबर ऐसे समय में पिताजी के पास बैठा करती थी और जब समझने लगी तब तो उनकी अनुपस्थित में भी लोगों को बिठाकर बातचीत, बहस, आलोचना करती थी। खून की गर्मी कहिए या उम्र का दोष पार्टी की बातें मुझे बहुत अपील करती थीं, और धीरेधीरे - मैं जान ही नहीं पाई कि मैं कब पार्टी की मेंबर बन गई और उसमें सक्रिय रूप से भाग लेने लगी। पिताजी को मेरे इस कार्य से कोई एतराज नहीं था। बस दो बातों के एक मैं अपनी पढ़ाई की उपेक्षा ना करूँ, सदा सचेत करते रहते थे। दूसरे किसी भी पार्टी या वाद किसी सीमाओं से बंधकर अपने को इतना संकीर्ण बना लूं कि दिमाग के सब पर्दे ही बंद हो जाए। उनकी बातों का पालन कहाँ तक

कर सकी, सो तो, खुदा ही जाने, पर इतना जानती हूँ कि जरा सा जिम्मेवारी का काम मिलने के बाद, खुदा ही जाने मुझ पर पार्टी का नशा सा छा जाता था।

बात यह सन 1945 के अंतिम दिनों की है। आजाद हिंद फौज के करिश्मे पढ़-पढ़ कर सारी जनता बावली हो रही थी। हड़ताल, जुलूसु, सभाओं का बाजार गरम था। कॉलेज के छत्र-छात्रओं जोश का ऐसा ज्वार आया था कि बिना मतलब ही ब्लेड से अंगूठे - काट- काटकर एक दूसरे के या नेताजी की तस्वीर पर खून का तिलक करते फिरत थे और महसूस करते थे कि अपने इस हौसले के काम से आजादी की लड़ाई को उन्होंने एक कदम और आगे बढ़ा दिया है। कॉलेज के अधिकारियों की इच्छा के खिलाफ और सख्त हिदायत कर देने के बावजूद एक बड़ी सभा मैदान में हुई। सारी बातें इस समय ठीक से याद नहीं पर वक्ता महाशय के किसी बात का मैं बड़े जोरों से विरोध कर उठी। वह मुझे शेर की तरह घूरने लगे और मेरे तर्क का उत्तर, जो कि शायद उनके वश के बाहर की बात थी, दिए बिना ही मुंह पर अपार घृणा लाकर, झिडकते हुए कहा ''अब लड़कियों से राजनीति के मामले में बहस कौन करें'' राजनीति की एबीसीडी तो जानती नही। हाँ राजनीति का ठेका तो आप लोगों ने ले रखा है ना। भेड़िया इंसान की भांति काम करते हैं और राजनीति की ढींग हाँकते हैं। 'मैं' बौखलाउठी। खैर उनका जो कार्यक्रम था वो हुआ और खूब जोर शोर से हुआ और मेरे मन में लड़कियों की राजनीतिक बुद्धि को लेकर जो ताना दिया गया था। वह कुछ ऐसा चुभ गया कि मैं उसे कभी भूल ना सकी। राजनीति को ही जीवन का क्षेत्र बनाने का जो संकल्प था, वो दृढ़ से दृढ़तर होता गया पर इस बात को मैंने महसूस किया कि सचमुच

लड़कियों की राजनीतिक बुद्धि पर लोग अधिक विश्वास नहीं करते। हमारी पार्टी के कितने सदस्य इस बात को घुमा फिराकर जब तब मेरे कानों में पहुंचा ही दिया करते थे, जिसे सुनकर मेरा खून खौल जाया करता था। जब कभी, कोई बड़ी जिम्मेदारी का काम देने की बात चलती तो लड़कियों का नाम उस लिस्ट नियति पर संदेह नहीं, से गायब हो जाता अधिक बहस करो तो कहते लड़कियों की नेक नहीं, पर जरा भावुक किस्म की होती हैं ना। कहीं घर की याद आ जाए तो रोने बैठ जाए तो सब चौपट हो जाए। इसके अतिरिक्त भी 50 तरह की झंझटे हैं लड़कियों को हर काम में साथ लेकर चलने में, और ये सब सुनकर लगता कि या तो मैं पार्टी-वाटी सब छोड़ दूँ या कुछ ऐसा कर गुजरूँ जिससे सदा केलिए इनका मुँह बंद हो जाए। पर उस समय तो मैं दोनों में से एक भी काम नहीं कर सकी।

तभी जीवन ने एक और मोड लिया । मैंने विवाह करने का निश्चय किया। सभी सोचते थे कि मैं अपनी पार्टी के सदस्य से विवाह करूँगी। पर जब सबने देखा कि मैं ने एक विरोधी पार्टी के सदस्य को अपना जीवन साथी चुना है तो उनके आश्चर्य और कौतूहल का ठिकाना ना रहा। पार्टी वालों ने तो एतराज भी किया। पर मैंने साफ कह दिया कि जिसमें मैं पिताजी के अतिरिक्त और किसी, को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं देती। साधारण परिचय से कैसे'' यह व्यक्ति मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गया था यह स्वयं एक लंबी गाथा है, पर बिल्कुल मेरी अपनी । आप इतना भर जान लेने की विवाह के पहले हमने खूब अच्छी तरह एक दूसरे को परख लिया था। राजनीतिक विचारों का कट्टरपन, पूरी तरह से एक दूसरे पर जाहिर कर दिया था और साथ ही यह भी साफ कर दिया था

कि शादी के बाद भी हम बदस्तूर अपनी अपनी पार्टियों का काम करेंगे और कभी भूलकर भी अपने विचार - दूसरे पर लादने की चेष्टा नहीं करेंगे।

पिताजी इस विवाह को लेकर काफी सशंक थे पर उन्हें दो वर्ष में ही अच्छी तरह आश्वस्त कर दिया कि मैंने ये चुनाव करके भी कोई गलती नहीं की। पार्टी के लोग तो यह समझे बैठे थे कि विवाह के बाद ही मैं पति का ग्रामोफोन रिकॉर्ड बनकर उनकी पार्टी के उनके विचारों के गुणगान करने लगूंगी । पर शादी के बाद भी जब मैं पहले की तरह ही बल्कि और भी अधिक लगन से अपनी पार्टी का काम करने लगी तो सचमुच ही मैं सबके आश्चर्य का विषय बन गई। हम दोनों पति - पत्नी अपने विचारों पर अपनी दृढ़ता से विश्वास रखने थे भी । ये सबंध कि उसमें किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं कर सका । हाँ, घर में कभी कभी बहस जरूर हो - जाया करती थी। पर वो गरमागरमी तक पहुंचे, उसके पहले ही शेखर उसे मजाक का रूप देकर वातावरण के तनाव को कम कर देते थे। यूँ हम दोनों में अपार स्नेह था पर पार्टी की गुप्त बातें हम कभी एक दूसरे को नहीं बताते हैं, इस मामले में, जिसका अतिक्रमण कोई नही करता। आश्चर्य तो यह था कि ना, हमारी एक सीमा थी हमारे काम में किसी प्रकार शिथलिता आई । ना हमारे संबंध में ही किसी प्रकार की कटुता, दोनों चीज समानांतर रेखाओं की भाँति अलग-अलग चल रही थी । पर साथ-साथ और कभी टकराती नहीं थी।

तभी चुनाव आ पहुंचे। आजादी के बाद का पहले चुनाव बड़ा जोश था बड़ी गर्मी। साल भर पहले से ही सभी पार्टियाँ अपना-अपना रंग जमाने की कोशिशों में जुटी हुई थी। जब व्यक्तियों के चुनने का सवाल आया

तो पार्टी से मुझे खड़ा होने के लिए कहा गया। मैंने साफ इनकार कर दि
और कहा कि आप किसी और योग्य व्यक्ति को खड़ा कीजिए। उसे जि
में मैं अपनी जान लड़ा दूंगी। पर खड़ी मैं नहीं होउँगी। सेर सबकी राय
अंत में अजीत मित्रा को टिकट देने का निश्चय किया और चुनाव
तैयारी जोरशोर से आरंभ हो गई । दो दिन बाद ही शेखर ने आ
बताया कि उनकी पार्टी की तरफ से वे खड़े हो रहे हैं। सुनकर ही
माथा ठनका। मन का भाव चेहरे पर आ गया तो वे बोले तुम्हें बात श
अच्छी नहीं लगी। सोच रही थी अभी तक तुम्हारी पार्टी की ही विरोधी थी
अब तुम्हारा भी विरोध करना पड़ेगा। तुम हारो यह भी नहीं चाहती और
तुम जीतो यह तो कभी भी नहीं चाहती। कुछ उल्टा सीधा हो जाए और तु
जबरदस्ती बुरा मान जाओ तो ठीक नहीं। ''अरे बुरा क्या मानना ? वि
ये विरोध कोई मेरा विरोध तो होगा नहीं, क्योंकि मैं अपनी निजी हैसि
से खड़ा हो रहा हूँ। सो विरोध तो पार्टी का ही होगा और वह तो तुम शु
से ही करती आई हो। कोई नई बात तो इसमें नहीं होगी फिर 20वीं स
के पढ़े लिखे स्त्री-पुरुष को इस बात की पूरी स्वतंत्रता है कि वह - ''अ
निजी विचार रखें और उनको अमल में लाने की तहे दिल से कोशिश क
तुम्हारी ऐसी उदारता देख कर ही तो मैं दिलों जान से तुम पर मर मि
थी और फिर जान बूझकर ही हमने बातचीत का विषय बदल दिया। क
को चाहे हम बड़े बड़े आदर्शों की बात कर गए पर मैंने देखा कि ज्यों ज्यों
चुनाव की गरमी बढ़ती, जाती थी, त्यों त्यों मन में कुछ तनाव आता जा र
था।

एक दिन पार्टी के दफतर में बैठे बैठे किसी ने ताना कस दिया कि इ
पर अधिक विश्वास नहीं किया जाए क्योंकि ब्लड ईज थीकेर दैन ए

थिंग्स एल्सा।' फिर, पार्टी के प्रति मैं चाहे कितनी भी वफादार हूँ'' अखिर पति तो पति ही है। फिर ऐसा पति जिस पर मुझे नाज़ था। जिसकी मैं सदा भूरी-भूरी प्रशंसा किया करती थी। सुना तो आग लग गई। इच्छा तो हुई कोई कड़वी सी बात कहकर मन का गुबार निकाल लू पर वहाँ तो कुछ नहीं कर सकी। गुस्सा निकाला घर आकर शेखर पर।

कल हम लोगों ने बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया है। तुम्हारी कस कर ''धज्जियां विखेरने वाली हूँ। कान खोल कर सुन लो अभी से नहीं तो कल फिर भिन भिन करोगी अरे बाबा तो कल सभा में धज्जियां विखेरना अभी से'' से क्यों कर रही हो। दूसरे दिन सचमुच ही, उचित अनुचित का विवेक खोकर अपने पति के खिलाफ ऐसा जोरदार भाषण दे दिया कि ताना कसनेवाले मित्र को उसी समय आकर मुझसे क्षमा माँगनी पड़ी। उस भाषण की सफलता ने मेरा हौसला बढ़ा दिया। लोगों पर उसका काफी प्रभाव पड़ा। लोगों के पास सबसे बड़ी दलील यही थी कि हमारी पार्टी में जरूरी ही कोई अच्छी बात है तभी तो सोने जैसे पति की निंदा करते भी, लड़की हिचकिचाई नहीं। नहीं तो औरत के लिए पति का विरोध करना कोई सरल काम नहीं। अब तो आए दिन सभाएं होने लगीं और मैं खुले आम अपने पति की पार्टी की और कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट रूप से शेखर की बुराई करने लगी।

भाषणों में जोश रहता था और बोलने का ढंग ऐसा कि सुनने वाला एक बार का तो मेरी बात का कायल हो ही जाता था। पार्टी के सभी सदस्य मुक्त कंठ से मेरी प्रशंसा करते और मैं फूली फिर रही थी, व्यस्त इतनी हो उठी कि घर और पति की सुध लेने का समय ही नहीं रहा। शेखर भी

अपने काम में व्यस्त और मैं भी। चार पाँच - दिन तक मिल भी नहीं पा... जब साथ बैठने का अवसर आता तब भी बातचीत आँचल बंद सी ही हो ... थी। उनकी यह बेरुखी मुझे भाती तो नहीं पर मैं परवाह भी नहीं करती थी... मन में कभी कुछ कश्मकश भी चलती तो यह कहकर समझा देती कि... विचारों का संघर्ष है। यूँ हम आज भी एक दूसरे को उतना ही स्नेह करते हैं।

चुनाव के कुल 15 दिन रह गए। इस कांस्टीट्यूएंसी में दोनों पार्टियों ने अपनी पूरी ताकत लगा दी थी। कोई अनुमान नहीं लगा सकता था कि परिणाम क्या होगा। टक्कर बहुत जोरदार थी और फिर एक ओर पति और दूसरी ओर पत्नी के होने से सब लोगों के आकर्षण का केंद्र बन गई थी। हमारी विरोधी पार्टी के पास साधन थे, सुविधा थी। वे लोग पानी की तरह पैसा बहा रहे थे। जबकि हमारे कितने ही काम पैसे की वजह से रुके पड़े थे। कार्यकर्ताओं की कमी नहीं थी। लोग रातदिन एक करके खून पसीना बहाकर काम कर रहे थे। पर पैसा कहाँ से आए। एक एक चुनाव के लिए जितना कोटा लि था, वह समाप्त हो चुका था। बल्कि उससे अधिक ही खर्च हो चुका था। फिर भी पैसे की आवश्यकता बनी ही थी। आखिर निर्णय किया गया, कि सब सदस्य ही सामर्थ्य भर सहायता करें। यदि संभव हो सका तो पार्टी बाद में अदा कर देगी। मैं घर पहुंची। निजी संपत्ति कुछ भी नहीं थी। शेखर से मांगना भी उचित नहीं था। कोई और रास्ता न देखकर मैंने अपने पिता के यहाँ से मिले जेवरों का बक्स पार्टी के हवाले कर दिया। शेखर को भी यह वात मालूम पड़ी पर वे वोले कुछ नहीं। ... कि मैं जेवर पहनती नहीं थी। न शौक था ना आवश्यकता। फिर अभी तो जैसे, जीने समने की बाजी लगी हुई थी। जेवरों की क्या विसात। दि...

सरकते जा रहे थे और मेरा पागलपन बढ़ता जा रहा था। सवेरे जल्दी निकल जाती। घर जाकर लोगों को समझाना, बस्तियों में जाकर लोगों के मन में, अपनी पार्टी के लिए सहानुभूति पैदा करना और उन्हें अपने पक्ष में करना। बस यही काम था। शेखर से बात किए भी कई दिन हो गए थे। पर वह सब कुछ मैंने उठाकर ताक पर रख दिया था। आखिर तीन दिन बाकी रह गए।

शाम को मैं किसी काम से घर आई तो देखा शेखर भी बैठे हैं, किसी काम में व्यस्त थे। उन्होंने एक क्षण को मेरी ओर आँख उठाकर देखा। फिर बिना एक भी शब्द बोले अपना काम करने लगे। जाने क्यों मुझे यह अपेक्षा चुभ गई। मैं भी चेहरे पर अत्यंत लापरवाही का भाव लिए अपने कमरे में चली गई और खट से दरवाजा बंद करके लेट गई। सवेरे से घूमते घूमते पैर बुरी-तरह दर्द कर रहे थे। उस पर से खाना पीना भी समय पर नहीं हो पता था, तो आराम करने को जी ललक उठा। लेटी तो शेखर की वह प्रेषित दृष्टि आँखों के सामने घूम गई। सोचने लगी चाहे कोई कितना ही उदार हो आखिर पुरुष, पुरुष ही है। वो बस यही चाहता है कि नारी उसी का अनुसरण करें। कहने को तो यह बड़ी बड़ी बातें करते थे पर जब मौका आया तो सहा नहीं - गया। तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया, सोचा शेखर ही होंगे। पर खोला तो देखा पार्टी का एक सदस्य खड़ा था वह जल्दी में था और घुसते उसने कहा ''रू. 100 दे सकेंगी आप'' ''रू. 100 तो मेरे पास अब बिल्कुल नहीं है, जो कुछ जेवर थे, वह भी दे आई। कहीं, से इंतजाम भी नहीं कर सकती'' ''इतनी जरूरत है कि क्या बताऊं। रुपए ना होने से बड़ी गड़बड़ हो जाएगी तभी मुझे अपनी एक हार की याद आई।''

विवाह के बाद शेखर ने मुझे बड़े दुलार से वो हार लाकर उपहार स्वरूप दिया था। पति के स्नेह में सने उस हार को निकालते समय एक बार मेरा हाथ कांप गया। पर दूसरे ही क्षण मैंने वो हार उसके हाथ पर रख दिया। हार लेते समय उसका मन वैसे ही गवाही नहीं दे रहा था, फिर यह सुनकर की यह मेरे पति का प्रेमोपहार है, उसे तुरंत लौटाते हुए बोला नहीं तब नही-नहीं", रहने दीजिए। और कहीं से देखूंगा" "अरे क्या पागलों जैसी बातें करते हैं आप भी। मैं इन थोती भावुकता में जरा भी विश्वास नहीं करती। फिर इस समय तो मेरे मन में शेखर के प्रति आक्रोश भी भरा हुआ था। सो जबरदस्ती हार देकर उसे विदा किया। उसके जाते ही शेखर ने बुलाकर । "वो हार दे दिया तुमने" 'हाँ' मैं ने तिनककर कहा हमारी पार्टी को रूपयों की सख्त जरूरत थी।" अरे मैं कोई सफाई थोड़ी मांग रहा हूँ" यूं ही पूछ बैठा था। "उनकी इस नरमाई से गुस्सा और बढ़ गया। मन ही मन कहा "सफाई माँगों भी तो यहाँ कौन देने बैठा है।" दूसरे दिन पार्टी के दफ्तर गई तो चारों ओर मेरी प्रशंसा हो रही थी। कोई और समय होता तो उस प्रशंसा से मन फूल उठता, पर कल से न जाने कौन सा कांटा मेरे मन में रहरह कर चुभ रहा था और मैं पूरी तरह खुश नहीं - हो पा रही थी। मैं कब से खेखर की उपेक्षा करती रही थी। पर उस ओर से नितांत बेखबर होकर बार-बार मुझे उनकी उपेक्षा का ध्यान आ जाता और मन सुलगता उठता। बार बार सोचती जब परीक्षा का मौक आया तो सारा आदर्शवाद झड गया ।

यह पुरुष होते ही ऐसे हैं, अंदर से कुछ ऊपर से कुछ। मैंने तो शादी के पहले ही साफसाफ कह दिया था कि दुनिया की कोई ताकत मुझे पार्टी से अलग नहीं कर - सकेगी। अब पार्टी का काम करती हूँ तो इसमें मुंह

फुलाने की क्या बात है। मैं तो मुंह नहीं फुलाती। यही सब सोचते- सोचते और काम करते-करते रात के - 11:30 बज गए हैं। कल तो चुनाव ही था, सोचा घर जाकर थोड़ी देर सो लिया जाए क्योंकि दूसरे, दिन सवेरे 5:00 बजे से ही लोगों को लाने का काम शुरू करना था। जैसे ही घर में घुसी, देखा शेखर के कमरे की बत्ती जल रही थी और वह अपने परम प्रिय मित्र से बातें कर रहे थे।

मन में जाने कैसा कौतूहल हुआ, बात सुनने का। शायद किसी रहस्य का उद्‌धाटन हो जाएयह सोच मैं चुपचाप दरवाजे पर जाकर खड़ी हो गई। रोम रोम कान बनकर अंदर की बातें सुनने लगी पता नहीं क्यों तुम दो तीन दिन से बड़े खिन्न "दिखाई देते हो। अरे मुझसे शर्त बदलो। जीत तुम्हारी निश्चित है मित्र ने कहा इसी का तो गम है भाई, मेरी जीत की संभावना ही मुझे खिन्न बनाए दे रही है। सोचता हूँ मैं हार भी गया तो उस लज्जा को सह लूंगा पुरुष हूँ और सहने का आदी। पर जीत गया तो दीपा का क्या होगा तुम देखते हो पगली हो गई है? इसके पीछे । वो हार का धक्का बर्दाश्त नहीं कर सकेगी और सच पूछो तो इसीलिए चाहता हूँ कि मैं हार जाऊं। बड़े हताश और बुझे हुए स्वर में "मित्र ने कहा क्या पागलों जैसी बातें कर रहे हो। उको जब तुम्हारी चिंता नहीं तो तुम क्यों उनकी चिंता से हो गमगीन हुए, बैठे हो। तुम्हारी निंदा करने में वह पागलपन की सीमा तक उतर आई थी यह थी याद है "मुझे उसके इस पागलपन से ही तो प्यार है शर्मा । जब देखता हूँ कि लड़कियां" भावुकता को परे रखकर किसी बात पर यों खुले दिमाग से सोच सकती हैं तो भारत के सुनहले भविष्य की तस्वीर आंखों में उतर आती है" इससे अधिक कुछ भी सुनना मेरे लिए असंभव हो गया। रात कैसे बीती मेरा खुदा ही जानता है। 5:00 बजे मैं अपने काम पर ना जा सकी। ठीक 8:00 बजे विक्षिप्त अवस्था

में मैं अपना वोट जाने कैसे अपने पति की, पेटी में डाल आई।

शब्दार्थ :

गिड़गिड़ाना = बार-बार विनती करना, मिन्नत करना

बेबसी = लाचारपन, कुछ न कर पाने की स्थिति

बौखलाना = गुस्से या तनाव में आकर घबरा जाना

आत्मबोध = अपने भीतर की सच्चाई को समझना

विक्षिप्त अवस्था = मानसिक रूप से अस्थिर या उलझन की स्थिति

मुख्य बिंदु :

1. कहानी की नायिका एक मध्यवर्गीय, स्वतंत्र विचारों वाली शिक्षित लड़की है, जिसने अपने बुद्धिजीवी पिता के प्रभाव से राजनीति में रुचि ली।
2. कॉलेज के दिनों में उसे राजनीति में लड़कियों की भागीदारी पर तंज सुनना पड़ा, जिससे उसका संकल्प और मजबूत हुआ।
3. उसने एक विरोधी पार्टी के सदस्य शेखर से प्रेम-विवाह किया, लेकिन दोनों ने अपनी-अपनी पार्टियों के प्रति निष्ठा बनाए रखने का फैसला किया।
4. विवाह के बाद भी वे अपने-अपने राजनीतिक विचारों और कार्यों में पूरी तरह सक्रिय रहे।
5. जब चुनाव आया, तो नायिका ने खुद उम्मीदवार बनने से इनकार किया, पर अपनी पार्टी के लिए पूरे समर्पण से काम किया।
6. शेखर भी अपनी पार्टी से चुनाव लड़ने लगे, जिससे दोनों पति- पत्नी राजनीतिक रूप से आमने-सामने आ गए।

7. नायिका ने भावुकता छोड़कर अपने पति की आलोचना करते हुए जोशीले भाषण दिए, जिससे पार्टी में उसकी सराहना हुई।
8. उसने चुनाव के लिए अपनी निजी संपत्ति और पति द्वारा दिया गया हार तक पार्टी को दे दिया, पर शेखर ने कभी कोई विरोध नहीं किया।
9. चुनाव की पूर्व संध्या पर उसने शेखर की अपने मित्र से बातचीत सुन ली, जिसमें उन्होंने उसकी भावुकता और समर्पण की प्रशंसा की।
10. भावनात्मक रूप से विचलित होकर नायिका ने अंततः अपने पति को वोट दे दिया, जो उसके अंतर्मन के प्रेम, त्याग और आत्मबोध की विजय थी।

सारांश :

यह कहानी एक शिक्षित, आत्मनिर्भर और भावनात्मक रूप से दृढ़ स्त्री की है, जो मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से आती है और राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाती है। उसके पिता बुद्धिजीवी थे, जिनसे उसने स्वतंत्र विचारधारा और वाद-विवाद की रुचि पाई। कॉलेज के दिनों में ही वह पार्टी की सदस्य बन गई और उसमें सक्रिय हो गई। एक भाषण में जब किसी ने उसकी राजनीतिक समझ पर सवाल उठाया, तो उसने राजनीति को अपना जीवन क्षेत्र बनाने का पक्का निश्चय कर लिया।

समय बीतने के साथ उसने एक विरोधी पार्टी के सदस्य, शेखर, से विवाह कर लिया। दोनों ने तय किया कि वे अपनी - अपनी पार्टियों से जुड़े रहेंगे और एक - दूसरे के विचारों का सम्मान करेंगे। उनका वैवाहिक जीवन स्नेहपूर्ण था, पर राजनीतिक सीमाएं तय थीं।